



## राज-धर्म

श्याम शंकर उपाध्याय

पूर्व जनपद एवं सत्र न्यायाधीश/  
पूर्व विधिक परामर्शदाता मा0 राज्यपाल  
उत्तर प्रदेश, राजभवन  
लखनऊ।

मो0- 9453048988

ई-मेल: ssupadhyay28@gmail.com

1. राजधर्म का अनुपालन राजाओं अथवा शासकों का प्रथम कर्तव्य होना कहा गया है। आचार्य चाणक्य के अनुसार राज्य के निम्नांकित सात अंग होते हैं : “स्वाम्यमात्यश्च राज्यकर्मी दुर्ग कोषो बलं सुहृत्, परस्परपकारीदं सप्तांग राज्जमुच्यते, एकांगेनापि विकलमेतत्साधु न वर्त्तते, तस्य समग्रयमन्विच्छन् कुर्वीत सुपरीक्षणम् (चाणक्य अर्थशास्त्र) : अर्थात् 1. स्वामी अथवा राजा 2. मंत्री 3. कर्मचारीगण 4. दुर्ग अथवा किला 5. कोष अथवा खजाना 6. सेना 7. मित्रवर्ग। इनमें से एक भी अंग में गड़बड़ी होने से राज्य में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। इसलिये कुशल राजा को प्रयत्न-पूर्वक राज्य के इन सात अंगों की सुरक्षा तथा सम्बर्धन करना चाहिये। भारतीय चिन्तन परम्परा में “धर्म” वस्तुतः विधि एवं विधि के शासन (Law & Rule of Law) के संदर्भ में समझा जाता रहा है। महाभारत के ‘कर्ण-पर्व’ के अध्याय 69 के श्लोक संख्या 58 में धर्म अर्थात् विधि के महत्त्व को रेखांकित करते हुए इस प्रकार कहा गया है : “धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः, यत् स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः” अर्थात् धर्म (विधि) ही समाज को धारित व पोषित करता है, धर्म ही समाज की व्यवस्था को बनाये रखता है, धर्म ही सभी का हित व अधिकार सुरक्षित रखता है, धर्म ही सभी की प्रगति सुनिश्चित करता है, सचमुच में धर्म ही वह कारक है जो समाज के उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करवाता है। धर्म अर्थात् विधि की महत्ता को रेखांकित करने वाले महाभारत के कर्ण-पर्व के उपरोक्त श्लोक का उल्लेख भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ए.एस. नारायण दीक्षितुलू प्रति आन्ध्र प्रदेश राज्य, (1996) 9 सुप्रीम कोर्ट केसेस 548 (प्रस्तर 59) में करते हुए उसे अपनी स्वीकृति प्रदान की गयी है।
2. प्राचीनकाल में जब राजा प्रथम बार सिंहासनारूढ़ होने पर अपने आप को विधि, धर्म अथवा दण्ड से परे मानता हुआ यह गर्वोक्ति करता था कि : अदण्ड्योस्मि अदण्ड्योस्मि अर्थात् मैं विधि अथवा दण्ड से परे हो गया हूँ, मैं विधि अथवा दण्ड से परे हो गया हूँ तब राजा का पुरोहित धर्मदण्डरूपी पलाशदण्ड से राजा के सिर पर हल्के से दो बार प्रहार करते हुए राजा को विधि की सर्वोच्चता व राजधर्म का बोध कराते हुए कहता था : “धर्मदण्डोस्ति, धर्मदण्डोस्ति” अर्थात् तुम राजा के भी ऊपर धर्म अर्थात् विधि का शासन है और विधि के शासन सम्बन्धी इस अवधारणा को राजा विनम्र भाव से स्वीकार करता था। राजा और प्रजा के आपसी सम्बन्ध को महाभारत के ‘अनुशासन पर्व’ में इस प्रकार बताया गया है : प्रजाकार्ये तु तत्कार्ये प्रजासौख्यं तु तत्सुखम्, प्रजाप्रियं प्रियं तस्य, स्वहितं तु प्रजाहितम्, प्रजार्थं तस्य सर्वस्वमात्मार्थं न विधीयते जिसका तात्पर्य है कि “प्रजा का कार्य ही राजा का कार्य है, प्रजा का सुख ही राजा का सुख है, प्रजा का प्रिय ही राजा का प्रिय है तथा प्रजा के हित में ही राजा का अपना हित है, प्रजा के हित के लिए ही उसका सर्वस्व है, अपने लिये कुछ भी नहीं है।

3. अपराधियों को दण्ड देने में राजा द्वारा कोई अनुचित दयालुता दिखाने तथा अपराधी-अपराधी में विभेद नहीं करने का परामर्श इस प्रकार दिया गया है "तत्त्वविदिभश्च बहुभिः सहासीनो नरोत्तमैः, कर्तारमपराधं च देशकालौ नयानयौ, ज्ञात्वा सम्यग्यथाशास्त्रं ततो दण्डं नयेन्नुषु" अर्थात् दण्ड शास्त्र को भलीभांति जानने वाले श्रेष्ठ पुरुषों के साथ बैठकर राजा परामर्श करे और तब अपराधी, अपराध, देश, काल, न्याय और अन्याय की समुचित विवेचना करके दण्ड शास्त्र में दी गयी व्यवस्था के अनुसार राजा अपराधी को दण्ड देवे। महाभारत के अनुशासन पर्व में लोकमर्यादा एवं विधि के शासन के प्रवर्तन की दृष्टि से एक सजग शासक अथवा न्यायकर्ता के कर्तव्य क्या होने चाहिए, इसे महर्षि अत्रि ने निम्नवत् निरूपित किया है : दुष्टस्य दण्डः सुजनस्यपूजा, न्यायेन कोषस्य च संप्रवृद्धिः, अपक्षपातोर्थिषु राष्ट्ररक्षा, पंचैव यज्ञाः कथिताः नृपाणाम् (अत्रिस्मृति) : अर्थात् राजाओं के लिए पाँच कार्य यज्ञ के समान बताए गए हैं : 1. दुष्टों को दण्ड देना 2. सज्जनों को सम्मान देना 3. न्यायपूर्वक कोष की वृद्धि करना 4. पक्षपातरहित होकर याचकों की आवश्यकता पूरी करना 5. राष्ट्र रक्षा। अपराध नियंत्रण की दृष्टि से महाभारत के अनुशासन पर्व में राजा का कर्तव्य इस प्रकार बताया गया है : लुब्धाः कठोरावाप्स्य मानवाः दस्युवृत्तयः, निग्राह्या एव ते राज्ञा संगृहीत्वा यतस्ततः अर्थात् लोभी, निष्ठुर तथा डाका डालने वाले मनुष्यों को राजा को जहाँ-तहाँ से पकड़वाकर उन्हें कारागार में डाल देना चाहिए। महाभारत के दान-धर्मपर्व में भी कहा गया है : "गुह्यान् विगर्हयेदेव पूज्यान् सम्पूजयेत् तथा, दण्ड्यांश्च दण्डयेद्देवि नात्र कार्या विचारणाः" जिसका अर्थ है कि राजा निन्दनीय मनुष्यों की निन्दा करे, पूजनीय मनुष्यों का सम्मान करे तथा दण्ड के योग्य मनुष्यों को दण्ड देवे और इसमें कोई अन्यथा विचार नहीं रखे। अपराधानुरूपेण दुष्टं दण्डेन शासयेत्, धर्मः प्रवर्तते तत्र यत्र दण्डरुचिर्नृपः, नाधर्मो विद्यते तत्र यत्र राजाक्षमान्वितः, अशिष्टशासनं धर्मः शिष्टानां परिपालनम् जिसका तात्पर्य है कि राजा दुष्ट को उसके अपराध के अनुसार दण्ड देकर उसका शासन करे, जहाँ राजा न्यायोचित दण्ड देने में रुचि रखता है वहाँ धर्म अर्थात् विधि का पालन होता है, जहाँ राजा क्षमाशील न हो वहाँ अधर्म नहीं होता, अशिष्ट पुरुषों को दण्ड देना और शिष्ट पुरुषों का पालन करना राजा का धर्म है। वध्यांश्च घातयेद् यस्तु अवध्यान् परिरक्षति, अवध्या ब्राह्मणा गावो दूताश्चैव पिता तथा, विद्यां ग्राह्यते यश्च ये च पूर्वापकारिणः, स्त्रियश्चैव न हन्तव्या यश्च सर्वातिथिर्नरः जिसका तात्पर्य है कि राजा मृत्यु-दण्ड के योग्य पुरुषों को मृत्यु-दण्ड देवे, जो मृत्यु-दण्ड के योग्य नहीं हों उनकी रक्षा करे, विद्वान, गौ, दूत, पिता, जो विद्या पढ़ाता हो अथवा अध्यापक हो और पूर्व में कोई श्रेष्ठ कार्य किया हो, ऐसे लोग मृत्यु-दण्ड के योग्य नहीं माने गये हैं, स्त्रियों का तथा जो सब का अतिथि-सत्कार करने वाला हो उस व्यक्ति को भी मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए।
4. यत् प्रजापालने पुण्यं प्राप्नुवन्तीह पार्थिवाः, न तु प्रतुसहस्रेण प्राप्नुवन्ति द्विजोत्तमाः (अत्रिस्मृति) : अर्थात् प्रजा का सम्यक् रूप से पालन करने से राजाओं को जो पुण्य प्राप्त होता है वह पुण्य श्रेष्ठ द्विजों द्वारा किए गए हजारों यज्ञों से भी उन्हें नहीं प्राप्त होता है। अहिंसा सूनृता वाणी सत्यं शौचं दया क्षमा, वर्णिनां लिंगिनाच्चैव सामान्यो धर्म उच्यते, सर्वस्यास्य यथान्यायं भूपतिः सम्प्रवर्त्तकः, तस्याभावे धर्मनाशस्तदभावे जगच्च्युतिः (कौटिल्य अर्थशास्त्र) : जिसका अर्थ है कि अहिंसा, सुन्दर वाणी, सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा सभी वर्णों एवं आश्रमों का सामान्य धर्म है। राजा को इन्हें अवश्य प्रवर्तित करना चाहिए अन्यथा इनके नहीं होने से सर्वप्रथम धर्म का नाश होता है और धर्म के नाश से जगत नष्ट हो जाता है। धर्म का सतत् हास होते चले जाने पर जब लोक मर्यादाएं समाप्त होने को उद्यत हो जाती हैं तो धर्म एवं लोकमर्यादा की पुनर्स्थापना हेतु तथा दुष्टों के विनाश व सज्जनों की रक्षा हेतु स्वयं ईश्वर को ही संसार में अवतरित होना

होता है जैसाकि गीता में उद्धरण आता है। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत, अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्, परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्, धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे। 'नारदस्मृति' (धर्मकोश, पृष्ठ 870 देखें) में राजाओं को परामर्श दिया गया है कि वह वेदों में विश्वास करने वाले आस्तिकों और अविश्वास करने वाले नास्तिकों को उसी प्रकार समान रूप से सुरक्षा प्रदान करे जिस प्रकार वह अपने किले और राज्य को सुरक्षा प्रदान करता है ।

5. शास्त्रोक्ति है कि "धर्माय राजा भवति न कामकरणाय तु" जिसका तात्पर्य है कि राजा का प्राथमिक कर्तव्य धर्म (विधि) के अनुसार शासन करना होता है न कि विलासितापूर्ण जीवन जीना । आचार्य कौटिल्य ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' में राज्य और राजाओं का कर्तव्य बताते हुए कहा है "प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्, नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्" जिसका अर्थ है कि राज्य अथवा राजा को प्रजा के सुख को ही अपना सुख एवं प्रजा के हित को ही अपना हित मानना चाहिए और अपने को प्रिय लगने वाले कार्य की चिन्ता नहीं करके प्रजा को प्रिय लगने वाले कार्य को ही अपने लिये प्रिय मानना चाहिए । इसी प्रकार मनुस्मृति के अध्याय 9 में महाराज मनु ने कहा है "यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समम्, तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्" अर्थात् जिस प्रकार पृथ्वी सभी जीवों की माता की तरह बिना किसी भेदभाव के उन्हें अपने ऊपर धारण करती है और उनका पालन-पोषण करती है उसी प्रकार राज्य और राजा को भी अपनी समस्त प्रजा का बिना भेदभाव किये हुए पालन-पोषण करना चाहिए । महाभारत के अनुसार "एव धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थं संप्रलीनान्निबोध, सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मं प्रविष्टाः, सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः, राजमूला महाभाग योगक्षेमसुवृष्टयः, सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्मः परायणम्" जिसका तात्पर्य है कि राजधर्म (राजनीति) ही सभी धर्मों का तत्व या सार है ।
6. महाराज मनु ने मनुस्मृति में धर्म को ही दण्ड अथवा दण्ड को ही धर्म कहते हुए धर्म और दण्ड की महत्ता इस प्रकार व्यक्त की है : दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वाः दण्ड एवाभिरक्षति, दण्डः सुप्तेषुजागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः अर्थात् दण्ड अर्थात् धर्म ही राजा सहित प्रजा पर शासन करता है, दण्ड/धर्म ही सभी की रक्षा करता है, सभी के सो जाने पर भी दण्ड/धर्म ही जागता रहता है इसीलिए विद्वानों ने धर्म को ही दण्ड कहा है। "while the world sleeps, the law stays awake". मनुस्मृति के ही अध्याय 8 में महाराज मनु ने बिना किसी भेदभाव के समस्त प्रकार के अपराधियों को समुचित दण्ड देने के प्रश्न पर कहा है "पिताऽचार्यः सुहन्माता भार्या पुत्राः पुरोहितः, नादण्डयो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मं न तिष्ठते" अर्थात् राजा को चाहिए कि वह अपराधी को उचित दण्ड दिये बिना कदापि नहीं छोड़े भले ही अपराधी से उसका कितना ही निकट सम्बन्ध क्यों न हो अन्यथा ऐसे राज्य में जहां अपराधियों को समुचित रूप से दण्डित नहीं किया जाता हो वहां विधि का शासन कदापि नहीं स्थापित हो सकता है, इसलिए अपराधी भले ही राजा का पिता, शिक्षक, मित्र, माता, पत्नी, पुत्र, पुरोहित ही क्यों न हो परन्तु उसे दण्ड दिये बिना राजा को नहीं छोड़ना चाहिए ।
7. लोकमर्यादा को प्रवर्तित करने वाला लोकधर्म वस्तुतः लोक सापेक्ष व काल सापेक्ष होता है, स्थिर होते हुए भी गतिशील होता है। त्रेतायुग में "राजसत्ता" के प्रथम अधिकारी होते हुए भी राम अपने इस अधिकार को प्रजा के आग्रह व दबाव के उपरान्त भी लोकमर्यादा अथवा लोकधर्म की रक्षा के लिए छोड़कर वनवास के लिए चले जाते हैं परन्तु द्वापर युग में इसी राजसत्ता सम्बन्धी अधिकार के लिए पाण्डवों व कौरवों के मध्य महाविनाशकारी महाभारत का युद्ध होता है। धर्म और अधर्म का अर्थ बहुधा बहुत से मनुष्यों को स्पष्ट होते हुए भी वह प्रायः उसी प्रकार अधर्म में आसक्तित्वान होकर लिप्त हो जाते हैं जैसे कौरवों और पाण्डवों के बीच महाविनाशकारी महाभारत के युद्ध को टालने एवं उन्हें इसके लिए तैयार करने के

प्रयोजन से श्रीकृष्ण के द्वारा धर्म व अधर्म आदि का उद्धरण देते हुए समझाने पर दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से इन शब्दों में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी कि : "जानाम्यधर्मम् न च मे निवृत्तिः, जानामि धर्मम् न च मे प्रवृत्तिः" (अर्थात् अधर्म क्या है इसे मैं जानता हूँ परन्तु उससे मेरी निवृत्ति अथवा मुक्ति नहीं है और धर्म क्या है उसे भी मैं जानता हूँ परन्तु उसमें मेरी प्रवृत्ति अथवा रुचि नहीं है)। धर्मसम्मत मार्ग से विमुख होने और अधर्मपरायण होने का मनुष्य के जीवन में और समाज में भी किस प्रकार के अनिष्टकारी भयावह परिणाम हो सकते हैं यह धर्म-विमुख दुर्योधन के हस्त्र से सहज ही समझा जा सकता है। महाभारत के स्वर्गारोहणपर्व में महर्षि वेदव्यास ने कहा है "ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे, धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते" (मैं अपनी दोनों भुजाएं उठाकर यह बात दावे के साथ कह रहा हूँ कि धर्म के पालन से ही अर्थ और काम की पूर्ति सम्भव है परन्तु फिर भी कोई मेरी बात सुनता ही नहीं है । इसलिए यदि अर्थ और काम की प्राप्ति चाहते हो तो धर्म का पालन क्यों नहीं करते हो ?)।

8. राजा कोई महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले किस प्रकार के लोगों के साथ परामर्श करे, इस बारे में महाभारत के अनुशासन पर्व में इस प्रकार बताया गया है : पंचापेक्षं सदा मन्त्रं कुर्याद् बुद्धियुतैर्नरैः, कुलवृत्तश्रुतोपेतैर्नित्यं मन्त्रपरो भवेत् जिसका अर्थ है कि राजा सर्वप्रथम पाँच बुद्धिमान मन्त्रियों के साथ बैठकर राज-काज के बारे में गुप्त मन्त्रणा करे, राजा को केवल उन्हीं मन्त्रियों और व्यक्तियों से सदा मन्त्रणा करनी चाहिए जो बुद्धिमान, कुलीन, सदाचारी, विधि व परम्परा आदि के अच्छे ज्ञाता हों । राज्य के कर्मचारी वर्ग के क्रिया कलापों एवं उनके द्वारा किये जाने वाले भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने की दृष्टि से राजा अथवा प्रशासक के दायित्व का बोध महाराज मनु द्वारा इस प्रकार कराया गया है : ये नियुक्तास्तु कार्येषु हन्युकार्याणि कार्याणाम्, धनोष्मणापच्यमानास्तान्निः स्वान्कारयेन्नृपः, तान्चिदित्वा सुचरितैर्गूढस्तत्कर्म कारिभिः, चारैश्चानेकसंस्थानैः प्रोत्साद्य वशमानयेत्, तेषां दोषानभिख्याप्य स्वे स्वे कर्मभि तत्त्वतः, कुर्वीत शासनं राजा सम्यक्सारापराधतः (मनुस्मृति, अध्याय 9) अर्थात् राजा को चाहिए कि वह अपने कर्मचारी वर्गों में से उन कर्मचारियों, जिन्होंने राजकीय कार्य को सम्पन्न करने में शिथिलता बरती हो अथवा जिन्होंने भ्रष्टाचार करते हुए अवैध रूप से धनार्जन करके अपने अन्दर धन की गर्मी पैदा कर ली हो, के क्रिया-कलापों के बारे में चरित्रवान् एवं योग्य गुप्तचरों के माध्यम से सूचनायें संकलित कराये और उन्हें उनके द्वारा किये गये कदाचार व भ्रष्टाचार को अपराध मानते हुए उनके भ्रष्ट धन को जब्त कर लेवे, कृत अपराध के समतुल्य समुचित रूप से उन्हें दण्डित करते हुए उनको नियंत्रित करे तथा आवश्यक होने पर उन्हें उखाड़ फेंके अर्थात् सेवा से बर्खास्त कर देवे और उनके द्वारा कृत कदाचार, भ्रष्टाचार व आरोपित शास्ति को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित करते हुए राजा अथवा शासक को प्रभावी रूप से शासन करना चाहिये) । राजा को अपने सेवकों के साथ हंसी-मजाक करने का निषेध करते हुए सेवकों के प्रति कैसा बर्ताव करना चाहिए, इसका उल्लेख महाभारत के अनुशासन पर्व में इस प्रकार आता है : सम्प्रहासश्च भृत्येषु न कर्तव्यो नराधिपैः, लघुत्वं चैव प्राप्नोति आज्ञा चास्य निवर्तते, भृत्यानां सम्प्रहासेन पार्थिवः परिभूयते, अयाच्यानि च याचन्ति अवक्तव्यं ब्रुवन्ति च, पूर्वमप्युचितैर्लाभैः परितोषं न यान्ति ते, तस्माद् भृत्येषु नृपतिः सम्प्रहासं विवर्जयेत् जिसका तात्पर्य है कि राजा को अपने सेवकों के साथ हास-परिहास नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से राजा को लघुता प्राप्त होती है और राजा की आज्ञा का पालन नहीं किया जाता है, सेवकों के साथ हास-परिहास करने से राजा का तिरस्कार होता है, सेवक न मागने योग्य वस्तुएं भी राजा से मांग बैठते हैं और न कहने योग्य बातें भी राजा से कह डालते हैं, पहले ही उचित लाभ मिल जाने पर भी राजा के सेवक संतुष्ट नहीं होते हैं, इसलिए राजा को सेवकों के साथ हंसी-मजाक कदापि नहीं करना चाहिए ।

9. गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार सेवकों का धर्म यद्यपि बड़ा कठिन होता है : "सब ते सेवक धरम कठोरा" तथापि सेवकों अथवा लोक सेवकों को अपने कर्तव्य का निर्वाह निष्ठापूर्वक करना ही होता है । भर्तृहरि का भी कथन है कि "सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामपि अगम्यः" जिसका तात्पर्य है कि सेवा धर्म अत्यन्त कठिन होता है और योगियों के लिए भी इसे कर पाना आसान नहीं होता है ।
10. भारतीय चिन्तकों के मतानुसार "धर्मेण शासिते राष्ट्रे न च बाधा प्रवर्तते" जिसका तात्पर्य है कि धर्म अर्थात् विधि (rule of law) से शासित राष्ट्र में राष्ट्र व समाज की व्यवस्था के संचालन में शासकों के समक्ष कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है । आधुनिक विश्व की समस्त शासन व्यवस्थाओं में 'विधि के शासन' सम्बन्धी उपरोक्त प्राचीन भारतीय अवधारणा को इसीलिए सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'विधि के शासन' की अवधारणा की सर्वोच्चता का सम्मान करते हुए विधि से शासित होने वाले राष्ट्र ही वस्तुतः सर्वाधिक प्रगतिशील व सुसभ्य माने जाते हैं । इस सार्वकालिक व सार्वभौमिक अवधारणा के महत्व का आभास भारत में सामाजिक-मानविकी के चिन्तकों को बहुत पहले ही हो गया था जिसका कालान्तर में विश्व के अनेक राष्ट्रों ने भी अपनी-अपनी शासन प्रणालियों का आधार बनाया । धन, सम्पत्ति एवं अधिकार के महत्व एवं उसके उपयोग के तरीके को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध कवि रहीम ने अपने मशहूर ग्रन्थ 'रहीम ग्रन्थावली' में लिखा है : "प्राप्य चलान् अधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु, नापकृतम् नोपकृतम् न सत्कृतम् तर्हि तेन किं कृतम्" जिसका तात्पर्य है कि धन, सम्पत्ति एवं अधिकार से सम्पन्न होने पर जिस व्यक्ति ने अपने शत्रुओं को नुकसान नहीं पहुँचाया, मित्रों एवं बन्धु-बान्धवों का भला नहीं किया और अन्य अच्छे कार्य नहीं किये तो फिर उस व्यक्ति ने जीवन में क्या किया अर्थात् कुछ नहीं किया ।
11. विधि की शक्ति का उल्लेख उपनिषदों में इस प्रकार किया गया है : "Law is the King of Kings, And more powerful than the Kings, Nothing can be mightier than the Law, by whose strength the weak may prevail over the King."
12. परतन्त्र भारत के दौर में भारत में गवर्नर जनरल के पद पर नियुक्त रहे लार्ड मैकाले ने अमेरिका के संविधान पर कतिपय टिप्पणियों की थीं जिसकी सुसंगतता भारत की स्वातन्त्र्योत्तर सांविधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत सृजित लोकतांत्रिक संस्थाओं के सम्बन्ध में कदाचित् विचारणीय हो सकती है : "Your Constitution is all sail and no anchor. When a society has entered on its downward progress, either civilization or liberty, must perish. Either some Caesar or Napoleon will seize the reins of Government with a strong hand; or your republic will be as fearfully plundered and laid waste by barbarians in the twentieth century as the Roman Empire was in the fifth; with this difference, that the Huns and Vandals who ravaged the Roman Empire came from without, and that your Huns and Vandals will have been engendered within your own country by your own institutions."
13. इसी प्रकार ब्रिटिश इतिहासकार और कवि लार्ड बेकन द्वारा राष्ट्र-राज्य और उसके नागरिकों के दायित्वबोध के प्रति उदासीन हो जाने पर राष्ट्र राज्य के अवश्यम्भावी पतन के बारे में इस प्रकार कहा है : "When the Athenians finally decided not to give to the State, but the State to give to them, the freedom they most wished for was freedom from responsibility, the Athenians ceased to be free and never became free again."
14. राजनीति अर्थात् राजधर्म एवं धर्म पर्यायवाची नहीं है। राजनीति समाज का व्यावहारिक (Practical) पक्ष है जबकि धर्म के लिये यह आवश्यक नहीं है। धर्म सिद्धान्त अथवा आदर्श है, राजधर्म व्यवहार व यथार्थ। राजनीति और धर्म एक-दूसरे के साथ तब तक चल सकते हैं जहां तक धर्म अव्यावहारिक (impracticable) न हो अन्यथा राजधर्म अपना मार्ग स्वयं चुन लेता है। धर्म द्वारा ऐसा कोई आदर्श अथवा सिद्धान्त दिया जाना उचित नहीं हो सकता है जिसका अनुसरण किया जाना राजनीति के लिये असम्भव हो। राजनीति अव्यावहारिक नहीं हो सकती है। राजनीति जीवन में संघर्ष करते हुये आगे बढ़ने को कहती है। धर्म अडिग रह सकता है जबकि राजनीति का

लचीला होना और देशकाल की अपेक्षाओं के अनुरूप परिवर्तनीय होना उसकी विवशता है। धर्म दो-दो बराबर चार है, राजनीति परिस्थितियों के सापेक्ष दो-दो बराबर पांच, तीन, सात, दस और कुछ भी हो सकती है परन्तु ऐसा होते हुये भी राजनीति लोक विरोधी नहीं हो सकती। धर्म लोकमत के विपरीत भी हो सकता है, राजनीति नहीं। लोकमत के विपरीत जाते ही राजनीति अपने अवसान की ओर जाने लगेगी। राजनीति अथवा राजधर्म का पालक कभी भी संतुष्ट होकर नहीं बैठ सकता है। आचार्य चाणक्य के अनुसार: असन्तुष्टाः द्विजाः नष्टाः, सन्तुष्टाश्च भूभृताः जिसका अर्थ है: विद्वान (ब्राह्मण) यदि असन्तुष्ट रहने लगे तो वह नष्ट हो जाता है परन्तु राजा यदि सन्तुष्ट होकर बैठ जाये तो वह नष्ट हो जाता है। राजनीति का संचालक कभी संतुष्ट होकर नहीं बैठ सकता है, धर्म सदा सन्तुष्ट रहने को कहता है। जिसे राजनीति अथवा राजधर्म की समझ नहीं है, उसे धर्म की भी समझ नहीं हो सकती है।

15. राजनीति की समझ नहीं रखने वालों एवं राजनीति और राजनीतिज्ञों की निन्दा करने वालों के बारे में एक जर्मन विद्वान बर्टोल्ट ब्रेकट का यह मत वास्तव में महत्वपूर्ण है: “The worst illiterate is the political illiterate, he doesn’t hear, doesn’t speak, nor participates in the political events. He doesn’t know the cost of life, the price of the bean, of the fish, of the flour, of the rent, of the shoes and of the medicines, all depends on political decisions. The political illiterate is so stupid that he is proud and swells his chest saying that he hates politics. The imbecile doesn’t know that, from his political ignorance is born the prostitute, the abandoned child, and the worst thieves of all, the bad politician, corrupted and flunky of the national and multinational companies-- (Bertolt Brecht)” एक कुशल धर्मोपदेशक को यदि राजनीति अथवा राजधर्म की गहरी समझ न भी हो तो कम से कम उसे इसकी सामान्य समझ तो होनी ही चाहिये जैसा कि इस्लाम और ईसाइयत के धर्माचार्यों में अपने-अपने धर्मों की समझ के साथ-साथ उनमें पर्याप्त रूप से समसामयिक राजनीति की भी समझ देखने को मिलती है। राजनीति का आधार समाज है, शून्य (abstract) नहीं, धर्म का भी आधार कदाचित शून्य नहीं हो सकता है। धर्म जीवन और समाज को व्यवस्थित रखने अथवा उसका नियमन करने के लिये मार्गदर्शन तो कर सकता है परन्तु स्वयं व्यवस्था का संचालन नहीं कर सकता। लोक की अपेक्षा के अनुरूप व्यावहारिक होना राजनीति की विवशता है, कदाचित धर्म की नहीं। अव्यावहारिक राजनीति किसी भी के लिये त्याज्य हो सकती है। धर्म राजनीति का स्थान नहीं ले सकता यद्यपि कि धर्म राजनीति का मार्गदर्शन कर सकता है। निरा धर्म जो राजधर्म को सबल न करे और उसे लोक कल्याण के पथ पर अग्रसर न करे, निरर्थक है। समाज की व्यवस्था के लिये राजनीति पहले और धर्म बाद में चाहिये। धर्म राजनीति की मान्यताओं द्वारा स्थापित मर्यादाओं को बनाये रखने में पूरक अथवा सहायक हो सकता है परन्तु स्वयं राजनीति का स्थान ग्रहण नहीं कर सकता है।
16. महाभारत में उल्लेख आता है: “एव धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान् सर्वावस्थं संप्रलीनान्निबोध, सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका राजधर्मं प्रविष्टाः, सर्वे धर्मा राजधर्मप्रधानाः, राजमूला महाभागयोगक्षेमसुवृष्टयः, सर्वस्य जीवलोकस्य राजधर्मो परायणम्” जिसका तात्पर्य है कि सभी धर्मों से श्रेष्ठ राजधर्म है और सभी धर्मों का तत्त्व अथवा सार राजधर्म है।

\*\*\*\*\*

